2.

आदिकाल

(वि. सं० १०५०-१३७५)

अधिकांश विद्वानों द्वारा हिन्दी साहित्य का आदिकाल संवत् १०५० से १३७५ तक माना गया है । इस काल में अपभ्रंश भाषा का प्राधान्य था । इससे पूर्व संस्कृत और प्राकृत भाषा प्रचलित थी । अपभ्रंश साहित्यिक भाषा थी, जिसका प्रयोग प्रचलित रूढ़ि के कारण कवि लोग अपनी रचनाओं में कर रहे थे । बोलचाल के साथ इस साहित्यिक भाषा का दर्शन हमें खुसरो, चन्दबरदायी, सरहपा, विद्यापति आदि की रचनाओं में मिलते हैं । भारत की तत्कालीन ऐतिहासिक स्थिति ने कवियों को एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया था और वह था - राजा-महाराजाओं के राज्य प्रसादों के वैभव विलास तथा वीरता का वर्णन । वीरता भरा वर्णन कर चारण भाट कवियों ने धनार्जन करना अपना आद्य कर्तव्य बना लिया था ।

आदिकाल की परिस्थितियाँ - किसी भी काल या युग की साहित्यिक गतिविधियों को यथार्थ रूप में जानने के लिए परिस्थितियों का अध्ययन अत्यावश्यक होता है । परिस्थितियों से तत्कालीन जीवन का चित्रण हमारे सम्मुख उपस्थित होता है और उससे ज्ञान प्राप्त होता है । अतः समसामयिक राजनीतिक, आर्थिक, पारिवारिक, धार्मिक, वैज्ञानिक, शैक्षिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों को देखना-परखना अनिवार्य हो जाता है ।

१. राजनीतिक (ऐतिहासिक) परिस्थिति :- यह युग राजनीति की दृष्टि से अव्यवस्थित एवं विश्रृंखलित था । इस युग में पराजय ही पराजय होती रही है । अर्थात् यह युग पराजय का युग माना जा सकता है । भले ही युद्धों का युग कहा जाय ।

गुप्त साम्राज्य और सम्राट हर्षवर्धन[1] सन् ६०६-६४३ के पश्चात् यहाँ विदेशी आक्रमण होते रहे, जिनमें अरब के इस्लामों, बुखारा के तुर्कों के हमले विशेष रहे हैं । सातवीं-आठवीं शती तक यह क्रम जारी था । नवीं शती तक 'मिहिरभोज' (राजपूत राजा) तथा राष्ट्रकुटों के साम्राज्यों ने अपने-अपने राज्य संभाले । चालुक्य सेनापति के साथ-साथ हिन्दू राजाओं ने भी अपने-अपने राज्य संभाले । उधर कश्मीर के सम्राट ललितादित्य ने अपना राज्य संभाला, परंतु चोल राजा ने आपस में लड़-भिड़कर अपनी शक्ति का ह्रास कर लिया । ये राजागण शक्तिशाली थे, फिर भी विदेशियों से टकराते थे । दसवीं शताब्दी के अंत में महमूद गजनवी[2] का आक्रमण

---

१. हिन्दी साहित्य का अभिनव इतिहास -प्रा. रणसुभे, प्रा. भुतड़ा, पृ. ०८ ।

२. हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास १९८३, बाबू गुलाबराय, पृ. ०९ ।

हुआ और उसने उक्त शाही राज्य को जीता । साथ ही इस महमूंद गजनवी (मृत्यु सं. १०८७) ने मथुरा, कन्नौज, पंजाब, ग्वालियर तथा सोमनाथ के मंदिरों को लूटा । इन दिनों हिन्दू राजाओं में आपसी कलह होती रही । शहाबुद्दीन, मुहम्मद गौरी जैसों का आक्रमण गयारहवीं-बारहवीं शताब्दी में हुए । शहाबुद्दीन गौरी ने पृथ्वीराज चौहान से युद्ध कर संवत् १२४७ में उसे पराजित किया । इन दिनों दिल्ली में तोमर, अजमेर में चौहान, कन्नोज में गाहड़वालों के राज्य थे । इन्हीं के साथ पठान आदि बराबर लड़ते रहे हैं ।

आदिकाल में संकुचित राष्ट्रीयता होने के कारण इस समय का भारतीय राजा दस-पचास गांवों को ही अपना राष्ट्र मानकर पड़ोसी राजाओं से टकराता था, जिससे उसका पराभव होता था । पड़ोसी राज्य से उदास रहने वाले राजा-महाराजा संयुक्त रूप में शत्रु से नहीं झगड़ते थे। कलह, ईर्ष्या, द्वेष से व्यवहार जारी था । इस प्रकार इस समय सामंतवाद का बोलवाला था। अतः कहा जायेगा कि राजनीतिक दृष्टि से भारतीय इतिहास का यह काल पतन का काल रहा है ।

२. **धार्मिक परिस्थिति** - इन दिनों भारतवर्ष में वैदिक, पौराणिक धर्म के विविध रूप प्रचलित थे । बौद्ध-जैन धर्म अपने-अपने आदर्श से दूर रहने लगे थे , क्योंकि इस समय तक बौद्ध धर्म कई रूपों को अपना चुका था-महायान, वज्रयान, सहजयान तथा मंत्रयान । ऐसे में बौद्ध धर्म पर शंकराचार्य का भी प्रहार होने लगा था । तत्कालीन समय में जैन धर्म में भी फूट पड़ने लगी थी । भेदाभेद के कारण जैन तथा बौद्ध में संघर्ष होने लगा । इन धर्मों में वामाचार पद्धति का प्रचार होने से धार्मिक वातावरण दूषित हो गया था । नैतिक स्तर गिर गया था । उसका मूल कारण कामुकता था । मदिरापान करना, मांस भक्षण करना, मैथुन आदि की धूम रहने के कारण मानव संस्कृति का पतन होने लगा था ।

इस धार्मिक अशान्ति के कालखंड में वैदिक धर्म के वैष्णव, शैवों, शाक्तों आदि की भी यही स्थिति रही है । सिद्धि प्राप्त करने के लिए मंत्रों को साधन रूप में प्रचारित करने वाले साधकों को 'सिद्ध' कहा गया है । इन सिद्ध कवियों की परंपरा विकृत बौद्ध धर्म के रूप के अन्तर्गत आती है । इस सम्प्रदाय में सिद्धि को प्राप्त करने वाला साधक सिद्ध-पद को पहुँच जाता था । उनके अनुसार बाह्य अनुष्ठानों एवं पुस्तकीय ज्ञान से परमार्थ ज्ञान कदापि संभव नहीं है । कुल मिलाकर कहा जाएगा कि इस काल की धार्मिक परिस्थिति दूषित हो गई थी ।

३. **सामाजिक (सांस्कृतिक) परिस्थिति** - आदिकाल का समाज आदर्शहीन दिखाई देता है, जिसमें सामाजिक उच्चता शून्य के बराबर रही है । सामाजिक स्थिति 'यथा राजा तथा प्रजा' जैसी थी । जातीयता को महत्व देकर छुआ-छूत के नियमों का पालन किया जाने लगा । धर्म के अनुसार समाज रूढ़िग्रस्त हो गया । आगे इसकी दयनीय दशा होती गई । परिवार-परिवार न रहा । ऐक्य भावना का अभाव रहा । इसीलिए कलह होती रही । इस समय स्वयंवर की प्रथा जारी थी, परंतु कभी-कभी उसका विरोध होने से खून की नदियाँ बहती थीं । राजपूत जाति में जौहर दिखाने की प्रथा थी । साथ ही वीरता के कारण आत्म-बलिदान की प्रथा प्रचलित थी । जनसामान्य में मनोबल की कमी रही है, क्योंकि श्रम के कारण चारों ओर अस्थिरता ही अस्थिरता थी, जिससे सामाजिक दुरवस्था बलवती होती गई । गृहकलह के कारण बहुपत्नीत्व

की प्रथा चल पड़ी और अधिकतर लोग राजानुसार भोगविलासी जीवन विताने लगे । इसी में उनका अधिक समय अंतःपुर में बीतने लगा । अपने कर्तव्य से विमुख होकर जीवन विताने से समाज की उन्नति ठप्प हुई ।

४. **साहित्यिक परिस्थिति** - आदिकालीन परिस्थितियों का दर्शन काव्य-साहित्य में प्रतिबिम्बित हुआ है । इस संघर्ष युग में साहित्य का निर्माण शनैः शनैः होता गया है, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के मत से यह काल साहित्य में अन्तर्विरोधों का काल था, जिसमें कविता, नाटक इत्यादि लिखा जाने लगा । कवियों ने अपने कवि-कर्म में पांडित्य प्रदर्शन का कार्य किया है । श्री हर्ष का ''नैषध-चरित'' तथा ''सरस्वती कण्ठाभरण'' इसके प्रमाण हैं । इस समय कुंतक, जयदेव, विश्वनाथ, अभिनव गुप्त, मम्मट, आनंदवर्धन आदि का संस्कृत साहित्य उपलब्ध था। प्राकृत तथा अपभ्रंश साहित्य भी मौजूद था । हिन्दी या देशभाषा साहित्य इस समय था ही ।

सिद्ध साहित्य के रचयिताओं में सरहपा, लुईपा आदि थे । जैन साहित्य में 'नेमिनाथ रास, ''रेवति गिरी रास'' आदि रचनाएँ लिखी गई । नाथ साहित्य में गोरखनाथ, चोरंगीनाथ आदि द्वारा काव्य लिखा गया । रासो साहित्य में ''खुमान रासो'', ''हम्मीर रासो'' इत्यादि रचनाएँ लिखी गई । इन्हीं के साथ ''खुसरो की पहेलियाँ'', ''ढोला मारू रा दूहा'' आदि लौकिक साहित्य भी लिखा गया ।

इस काल में सहजयानी, बज्रयानी, सिद्धों, नाथपंथी योगियों, जैन धर्म के अनुयायियों ने तथा चारण भाट आदि ने वीरता एवं श्रृंगार का चित्रण किया है ।

अपभ्रंश तथा देशी भाषाओं में कई रचनाएँ रची गई, जिनमें अधिकतर धार्मिक विचारों का दर्शन होता है । कुछ कवियों ने अन्य विषयों पर भी कविताएँ लिखीं । संक्षेप में, समसामयिक परिस्थिति अस्थिर थी, फिर भी कवि-लेखकों ने यथामति अपनी लेखनी चलाकर साहित्य रचने का प्रयास किया है ।

५. **आर्थिक परिस्थिति :-** वीरगाथा काल में भारत धनाढ्य देश था, इसलिए विदेशियों की नजर इस पर थी । वे लोग समय-समय पर आक्रमण करके धन लूट ले जाते थे । जैसे सोमनाथ मंदिर आदि लूटने का कार्य महमूद गजनवी ने किया जो सर्वविदित है ।

इस समय धन संपत्ति के लिए आपसी संहार होते रहे हैं । 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' के अनुसार एक नरेश दूसरे नरेश पर चढ़ाई करके उसका धन ले लेता था । ऐश्वर्य तथा भोगविलास के लिए हर कोई प्रयत्नरत था जिससे उद्योगों का उत्पादन एवं खेती की पैदावार कम होती गई । इसलिए देश का विकास नहीं हुआ । अंत में कहा जायेगा कि लूटमार करके धन को महत्व दिया जाने लगा । देश का खजाना रिक्त होने के कारण दशा बहुत ही खराब हो गई ।

(६) **कलात्मक परिस्थिति** - हिन्दी साहित्य के आदिकाल में संगीत, चित्र, मूर्ति, स्थापत्य आदि कलाओं का दर्शन होता है, उनमें जातीय एवं धार्मिक गौरव की भावना विशेष अभिव्यक्त हो रही थी । भुवनेश्वर, खजुराहो, पुरी, सोमनाथ, वेल्लोर, कांची आदि के मंदिरों में स्थापत्यकला अद्वितीय रही है । संगीत कला उस समय जीवित थी । इस कला पर मुस्लिमों का अधिक प्रभाव

था । नृत्य, वाद्य, गायनादि तत्कालीन स्थिति के अनुरूप थे । सारंगी, तवला आदि का प्रयोग होता था । ढोलक पर गीत गाये जाते थे । कालान्तर में उसमें बदलाव आता गया ।

चित्रकला का भी यही हाल था । समसामयिक कलाकार ने अपनी तूलिका से राजा-महाराजाओं के वीरता भरे कार्य, महलों, रजबाड़ों, युद्धों आदि के चित्रों को रंग भरके प्रस्तुत करते थे । उस समय की भारतीय चित्रकला अटपटी एवं अविकसित रही है ।

मनुष्य मूर्तियों को गढ़ने का कार्य प्रारम्भ से करता आया है । मूर्तियाँ विशेषकर हिन्दूधर्म की देन हैं । अकेले खजुराहो में सन् ९५० ई० से सन् ११५० के अंतर्गत तीस मंदिर (१२ शैव, वैष्णव और १८ जैन, बौद्ध) बनाये गये । इन मंदिरों की मूर्तियाँ विशिष्ट (मिथुन) शिल्प की विशेषता लिए हुए हैं (व्हर्मिलियन प्रो. धर्मराज भोईर, औरंगाबाद पृ. २०) । हिन्दू अनेक देवी-देवताओं की मूर्तियाँ तराशते गये और विदेशी या भारतीय इस्लामी राजा उन्हें तोड़ते गये । अर्थात् इस काल में मूर्तिकला चोट खाती रही है । अतः इस काल की कलाओं में केवल संगीत कला को महत्व दिया गया था, शेष गौण थीं ।

सारांश यह है कि वीरगाथाकाल की परिस्थितियों से पृथक-पृथक जानकारी प्राप्त होती है । ऐतिहासिक दृष्टि से यह काल संघर्ष एवं पतन का, धार्मिकता से विकृति का, सामाजिकता से विकृति का, आर्थिक दृष्टि से रिक्त-अशक्तता और साहित्यिक परिस्थिति से झूठी प्रशंसा एवं अशुद्धता का काल प्रतीत होता है ।

आदिकाल की विशेषताएँ या वीरगाथाकाल की प्रवृत्तियाँ

आदिकाल या वीरगाथाकाल की प्रवृत्तियाँ (विशेषताएँ) निम्नलिखित हैं -

(१) **राष्ट्रीयता का अभाव** - आदिकाल के साहित्य में व्यापक राष्ट्रीयता का अभाव दिखाई देता है । संकुचित राष्ट्रीयता का स्थल-स्थल पर दर्शन होता है, क्योंकि उस समय की प्रवृत्ति 'यथा राजा तथा प्रजा' सी बनी थी और सब देशवासी अपनी-अपनी शान-शौकत, मान-मर्यादा में जीवन बिताने लगे थे । जबकि स्वामीगण राष्ट्र की अपेक्षा निजी बातों को महत्व देने लगे थे । संकीर्ण एवं कुत्सित प्रवृत्ति के कारण रात दिन कलह ही कलह होती रहती थी ।

राजागण सम्पूर्ण भारत को राष्ट्र नहीं मानते थे । वे केवल सौ-पचास गाँवों के अपने प्रदेश या राज्य को ही राष्ट्र मानते थे । राष्ट्रीयता का स्वरूप यहाँ से लुप्त हो चुका था । जिसके कारण देश का चित्र कलंकित होता गया, देश की एकता नष्ट होती गई और धीरे-धीरे इसके टुकड़े होते चले गये ।

(२) **आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा (अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन)** - इस कालांतर्गत के जो राजाश्रित कवि थे उनकी अधिकांश रचनाएँ प्रशंसा पूर्ण थीं । ये कवि भाट, चारण आदि थे। इन्होंने अर्थार्जन के लिए कुछ साहित्य लिखा जो मान, धन प्राप्ति का साधन बन गया था। स्तुति से आश्रय दाता प्रसन्न होकर धन प्रदान करते । इस काल में कवि लेखकों के साहित्य का केन्द्र स्वामी स्तुति रहा है ।[३]

---

३. 'उट्ठि राज पृथिराज बाण मनों लग्ग वीर नट ।
कढ़त तेग मन वेग लगत मनौ बीजु झट्ट घट ।।'
हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - डॉ. जयकिशन प्रसाद खंडेलवाल, षष्ठ सं. पृ. ६० ।